P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-12* (Part-2) March- 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

ऋग्वेदीय आख्यानों के आलोक में समाज तत्त्व विमर्श

गीता कोरानी
शोधच्छात्रः
संस्कृतम् विभागः,
सम्राट–पृथ्वीराज–चौहानः
राजकीय–महाविद्यालयः,
अजयमेरुः, राजस्थान, भारत

आशुतोष पारीकः
सहायक आचार्य एवं
शोधनिर्देशकः,
संस्कृतम् विभागः,
सम्राट–पृथ्वीराज–चौहानः
राजकीय–महाविद्यालयः,
अजयमेरुः, राजस्थान, भारत

सारांश

समाज में पारस्परिक सहयोग और समानता का भाव होना आवश्यक है तथा समाज की उन्नति के लिए सहृदयता, सामंजस्य और पारस्परिक द्वेष का अभाव भी आवश्यक है। वेदों से ही आर्य–संस्कृति तथा समाज का विकास हुआ है, जो समाज को धर्म, ज्ञान, विज्ञान, आचार–विचार और सुख–शान्ति आदि तत्त्वों की शिक्षा देकर उसकी समुन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है। ऋग्वेद के आख्यानों में कई प्रकार के सामाजिक तत्त्वों का सार वर्णित है। आवश्यकता है तो इन तत्त्वों को आख्यानों से प्राप्त कर इन्हें समाज के समक्ष प्रस्तुत करने की। आख्यान केवल मन को लुभाने वाली कथाएँ नहीं है इनमें कई प्रकार के गुढ़ रहस्यों का समावेश है।

मुख्य शब्द : समाज, आख्यान, संवाद–सूक्त, सामाजिक तत्त्व, वर्ण–व्यवस्था, आश्रम–व्यवस्था, स्त्री शिक्षा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र, विवाह।

प्रस्तावना

ऋग्वेदीय आख्यान तथा उनसे प्राप्त होने वाली शिक्षाएँ आज के सामाजिक परिप्रेक्ष्य के लिए अत्यन्त प्रेरणादायक सिद्ध हो सकती है। इस शोध लेख का उद्देश्य आख्यानों से प्राप्त होने वाले आध्यात्मिक, दार्शनिक, शैक्षिक तथा सामाजिक तत्त्वों को वर्तमान समाज के सन्दर्भ में किस प्रकार सहायता प्रदान कर सकते हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

समाजशास्त्र के सम्बन्ध में आख्यानों में सामग्री प्राप्य है किन्तु बहुत अधिक बिखरी हुई है इन विषयों से सम्बन्ध सामग्री का संकलन कर इसका विश्लेषण इस शोध पत्र के माध्यम से किया जाएगा।

"संगच्छध्वं सवदध्वम् सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते"।।[1]

इस प्रकार के आदर्श मंत्र से वेदों में आदर्श समाज की व्याख्या की गई है। मिलकर चलो, मिलकर बोलो। तुम्हारे चित्त–मन एक हो, तुम्हारी मंत्रणाए एक हों, तुम्हारा लक्ष्य एक हो। व्यक्ति और समाज परस्पर संबद्ध अंग है। व्यक्ति अंग है और समाज अंगी। व्यक्तियों से ही समाज की रचना होती है। समाज समष्टि है और व्यक्ति व्यष्टि। समाज की उन्नति, प्रगति, विकास के लिए वेदों में उचित चिन्तन हुआ है। यदि समाज में संगठन की शक्ति है तो उसकी उन्नति को कोई नहीं रोक सकता । समाज के बिना व्यक्ति का अस्तित्व नहीं है तथा व्यक्ति के बिना समाज नहीं बन सकता। अतः ये दोनों एक दूसरे के पूरक है। "वृक्ष को हरा–भरा रखने के लिए उसके मूल को सींचना आवश्यक है, उसी प्रकार समाज को विकसित एवं समृद्ध रखने के लिए व्यक्ति को समुन्नत करना आवश्यक है।" विकसित व्यक्तियों से ही समाज समुन्नत और प्रगतिशील होता है। समाज एक संगठन के रूप में कार्य करता है तथा व्यक्ति उसकी इकाई। समाज प्रत्येक व्यक्ति की प्रत्येक आवश्यकताओं को पुरा करता है। समाज एक से अधिक लोगों के समुदायों से मिलकर बने एक वृहद समूह को कहते हैं जिसमें व्यक्ति मानवीय क्रियाकलाप करते हैं। जो मानवीय क्रियाकलाप में आचरण, सामाजिक सुरक्षा और निर्वाह आदि की क्रियाएं सम्मिलित होती हैं। समाज लोगों का ऐसा समूह होता है जो अपने अंदर के लोगों के मुकाबले अन्य समूहों से काफी कम मेलजोल रखता है। किसी समाज में आने वाले व्यक्ति एक दूसरे के प्रति परस्पर स्नेह तथा सहृदयता का भाव रखते हैं। दुनिया के सभी समाज अपनी एक अलग पहचान बनाते हुए अलग–अलग रस्मों रिवाजों का पालन करते हैं। आख्यान शब्द का अर्थ– "वैदिक वाङ्मय में प्रमुख आख्यान शब्द के अर्थ पर विचार करने पर हमें यह ज्ञात होता है कि वेदों में आख्यान पद का प्रयोग कहीं भी नहीं हुआ है। केवल 'चक्षिङ्' धातु के आख्यान, अख्यत्, चक्ष्यथुः आदि क्रियारूपों का अपने मूलार्थ में प्रयोग है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि, अयं दर्शने अपि (स्पष्ट बोलना और देखना) धातु का रूप धारण

कर आ उपसर्ग पूवर्क ख्या धातु से ल्युट्(अन्) प्रत्यय के योग से आख्यान शब्द की रचना होती है।"[2]

जिस बात को या घटना विशेष को प्रकृष्ट रूप से वर्णित किया जाता है, उसे आख्यान कहते है। मनुष्य की बुद्धि में विद्यमान अनुमान एवं कल्पना की शक्ति ही आख्यान को जन्म देने वाली शक्ति है, जिसे साहित्य में विस्तार प्रदान किया गया है। आख्यान काल्पनिक होते है परन्तु ज्ञात से अज्ञात को सूक्ष्म से स्थूल को समझाते हैं। जिन आख्यानों की चर्चा वेद के नाम पर की जाती है उनमें ध्यान देने की विशेष बात यह है कि सभी आख्यान वेद में यथावत् नहीं उपलब्ध होते है परन्तु धीरे–धीरे परवर्ती साहित्य में उनके आज आर्यो द्वारा समय–समय पर इन आख्यानों के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए इन पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। सामाजिक विषयों को जानने में वैदिक संवाद सूक्तों का विशेष योगदान रहा है। आख्यानों की शिक्षा मानव समाज के सामूहिक कल्याण तथा विश्वमंगल की अभिवृद्धि के निमित्त है।

वर्ण व्यवस्था

वैदिक साहित्य में वर्ण शब्द का प्रयोग प्रायः रंग के अर्थ में हुआ है। आर्यों का वर्ण शुक्ल था तथा दस्युओं का कृष्ण।[3] ऋग्वेद में शुक्ल वर्ण को आर्यत्व का परिचायक माना गया है तथा कृष्ण को दासत्व का। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है कि "चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः"।[4]

ब्राह्मण

ब्राह्मण, विप्र, देव आदि शब्दों का प्रयोग वेदों में ब्राह्मण के लिए किया गया है। वेदों में ब्राह्मण के कर्तव्यों, गुण–धर्म, आचार–विचार, भक्ष्य–अभक्ष्य आदि का पर्याप्त विवेचन हुआ है। चत्वारों वै वर्णाः ब्राह्मणोराजन्यो वैश्यः शूद्रः।[5] ऋग्वेद के कई आख्यानों में भी ब्राह्मणों का वर्णन प्राप्त होता है। विश्वामित्र–नदी संवाद सूक्त[6] में विश्वामित्र का वर्णन है जो राजर्षि है जिनके द्वारा इस सूक्त में नदियों की स्तुति कर प्रार्थना की कई है कि वह उन्हें आगे जाने का मार्ग प्रदान करें। इन्द्र अगस्त्य संवाद सूक्त[7] में भी अगस्त्य द्वारा इन्द्र देवता की स्तुति की गई है। देवापि और शन्तनु संवाद सूक्त[8] में भी देवापि के द्वारा बृहस्पति की स्तुति की गई है इन सभी सवांद सूक्तों में जो ऋषियों का वर्णन है वे सभी ब्राह्मण ही है तथा ब्राह्मणों का कार्य यज्ञ–याज्ञन आदि करना था इस प्रकार का वर्णन मनुस्मृति में भी प्राप्त होता है जिसमें ब्राह्मण के कार्यों का विवेचन किया गया है।

"अध्ययपनमध्ययनं यजनं याजनं तथा
छानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्"।।[9]

क्षत्रिय

क्षत्र, क्षत्रिय, राजा, राजन्य आदि शब्दों का प्रयोग वेदों में क्षत्रिय के लिए प्रयोग किया गया है। क्षत्रिय के गुण तथा कर्मों का विवेचन ऋग्वेद के आख्यानों में भी प्राप्त किया जा सकता है। ऋग्वेद में क्षत्रिय के कर्मों को विशेष रूप उल्लिखित किया गया है। क्षत्रिय सूर्य के समान तेजस्वी हो। इसलिए इसे आदित्य भी कहा जाता है। ऋग्वेदीय आख्यानों में देवापि और शन्तनु संवाद सूक्त[10] में शन्तनु का क्षत्रिय (राजा) के रूप में वर्णन प्राप्त होता है। देवापि तथा शन्तनु दो भाई थे छोटा भाई शन्तनु राजगद्दी पर बेठा। शन्तनु के श्रेष्ठ शासक क्षत्रिय के रूप में इस सूक्त में व्याख्या की गई है वह अपनी प्रजा का हित चाहता है। इसी कारण वह राज्य में यज्ञ सम्पन्न करवाता है।

"बृहस्पते प्रति में देवतामिहि मित्रो वा यद्वरुणो वासि पूसा।
आदित्यैर्वा यद्वसुभिर्मरूम्वान्त्स पर्जन्यं शंतनवे वृषाय"।।[10]

रोमशा और भाव्यव्य संवाद सूक्त[11] में भाव्यव्य के पुत्र स्वनय नामक राजा का उल्लेख प्राप्त होता है। इस सूक्त में स्वनय भाव्यव्य (राजा) रोमशा (ब्रह्मवादिनी) की प्रेम कथा के साथ राजा की प्रकृती किस प्रकार की होती है इसका भी सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है।

"उपोप में पराश मा में दभ्राणि मन्यथाः।
सर्वाऽहमस्मि रोमशा गान्धारीणामिवाविका"।।[12]

इन्द्र अदिती वामदेव संवाद सूक्त[13] में इन्द्र को सेनानी के रूप में प्रस्तुत किया गया है इन्द्र अकेला ही सैकड़ो शत्रु सेनाओं को जीत लेता है।[14] इन्द्र ने जन्म लेते ही वामदेव को युद्ध के लिए ललकारा था जो कि क्षत्रिय का प्रतिक है। इन्द्र को सभी प्रजाओं का राजा कहा गया है। इन सूक्तों में क्षत्रिय के कर्तव्यों में युद्ध करना, विजय प्राप्त करना, धन–लाभ, प्रजा के अभिष्ट की पूर्ति करना यज्ञ करवाना प्रजा को दीर्घायू बनाना इनका उल्लेख प्राप्त होता है। इसी प्रकार का वर्णन मनुस्मृतिकार ने भी किया है–

"प्रजानां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः"।।[15]

वैश्य तथा शुद्र

वैश्य तथा शुद्र से संबद्ध सामग्री ऋग्वेद के आख्यानों बहुत कम प्राप्त होती है। ऋग्वेद में वैश्य को विराट् पुरूष का उरू बताया गया है। वैश्य राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था को संभालता है। वेदों में शुद्र को विराट् पुरूष के पैर से उत्पन्न बताया गया है।

आश्रम व्यवस्था

वर्ण–व्यवस्था के समान ही आश्रम–व्यवस्था भी प्राचीन परम्परा है। चार आश्रम वैदिक साहित्य के अन्तर्गत बताए गए है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। आश्रम व्यवस्था को भारतीय जीवन दर्शन का अभिन्न अंग माना गया है। ब्रह्मचर्य को आश्रम की आधारशिला माना गया है। गृहस्थ को व्यावहारिक पक्ष, यह जीवन की भौतिक उन्नति का सूचक है। वानप्रस्थ को मोक्ष–प्राप्ति का प्राथमिक साधन बताया गया है तथा संन्यास मुक्ति का सफल मार्ग है। आख्यानों में ब्रह्मचर्य और गृहस्थ आश्रम के विषय में पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है। वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम के विषय में सामग्री अत्यल्प है।

ब्रह्मचर्य आश्रम

वैदिक व्यवस्था के अनुरूप सामान्यत्या 25वर्ष तक ब्रह्मचर्य आश्रम की आयु मानी गई है। अथर्ववेद का एक पूरा सूक्त ब्रह्मचर्य विषयक है। ब्रह्मचारी गृहस्थच्च वानप्रस्थों यतिस्तथा एते गृहस्थ प्रभवाश्चत्वारः पृथागश्रमा।[16] ब्रह्मचर्य आश्रम का प्रारम्भ उपनयन संस्कार से होता है।

गृहस्थ आश्रम

मनुस्मृतिकार ने गृहस्थ आश्रम को सर्वोच्च आश्रम माना है।

यथा वायुं समाश्रित्य,वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य, वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।।[17]
तस्मात त्रयोअप्याश्रमिणों, ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते, तस्माज्जयेष्ठाश्रमों गृही।। [18]

विवाह संस्कार के साथ ही गृहस्थ आश्रम प्रारम्भ होता है पति–पत्नी को गृहस्थरथरूपी दो चक्र माना गया है। पुरुरवा–उर्वशी संवाद सूक्त[19] के माध्यम से वैदिक गृहस्थ आश्रम व्यवस्था का वर्णन प्राप्त किया जा सकता है। इस सूक्त के प्रमुख पात्र पुरुरवा–उर्वशी है। इस सूक्त को प. हरिशरण द्वारा पति–पत्नी के संवाद के रूप में व्याख्या की गई है। यहाँ पति–पत्नी के मधुर सम्बन्ध को बताते हुए गृहस्थ जीवन का वर्णन किया गया है। गृहस्थ यदि सुखी सम्पन्न है तो अन्य आश्रमों की प्रगति अबाध रूप से होती है। इसी प्रकार का वर्णन इस आख्यान में प्राप्त होता है। पुरुरवा–उर्वशी संवाद सूक्त के अनुसार गृहस्थ जीवन पति का पत्नी के बिना तथा पत्नी का पति के बिना व्यर्थ है। पत्नी की कामनाओं का वर्णन यहाँ इस प्रकार किया गया है। पति–पत्नी को चाहिए की वह घर के विषय की सलाह आपस में करके अपने गृहस्थ जीवन को सुचारू रूप से चलाए। अपने घर में नित्य रूप से प्रभु का स्मरण करे।

सरण्यु आख्यान[20] में भी गृहस्थ जीवन का दर्शन प्राप्त होता है। सूर्य तथा सरण्यु दोनों एक दूसरे के अघोङ और अर्घाङिगी है। दोनों में अधिक प्रेम है। सूर्य तथा सरण्यू का जन्म–जन्मान्तर का सम्बन्ध था। गृहस्थ व्यक्तियों का सम्बन्ध इसी प्रकार का होता है। इस प्रकार ऋग्वेद के सूक्तों में गृहस्थ जीवन का वर्णन किया गया है।

"त्वष्टादुहिते वहतुं कृणोतीतीदं विश्वं भूवनं समेति।
यमस्य माता पर्युह्यमाना मधे जाया विवस्वतो ननाश"।।[21]

वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम

आख्यानों में वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम से संबद्ध सामग्री बहुत ही अल्प प्राप्त होती है। वानप्रस्थ और संन्यासियों के लिए वेदों में प्रयुक्त यत्रि, मुनि, मुमुक्षु आदि प्राप्त होते है। यत्रि का अर्थ होता है संयमी जीवन बिताने वाले व्यक्ति। इस प्रकार का वर्णन आख्यानों में प्राप्त नहीं होता है।

नारी का गौरव

वैदिक काल में नारी की स्थिती बहुत आदरणीय तथा गौरव–शाली थी। उसको पुरूष की सहायक और सहयोगी माना जाता था। ऋग्वेद में स्त्री को ही घर कहा गया है।[22] मनु का कथन है कि "जहाँ नारियों का सम्मान होता है, वहाँ देवताओं का निवास होता है और जहाँ इनका निराधर होता है, वहाँ सारे कार्य निष्फल हो जाते है।"[23] ब्राह्मण ग्रन्थों में स्त्री की उपादेयता के विषय में अनेक सन्दर्भ दिखाई पड़ते है। स्त्री को सहधर्मिणी बताया गया है। शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि जब तक मनुष्य का विवाह नहीं होता, वह तब तक अपूर्ण है। पत्नी को प्राप्त कर ही वह पूर्ण होता है।[22] शतपथ ब्राह्माणकार ने स्त्रियों के अपमान, निरादर, और ताडन को निन्दनीय बताया है।[25]

स्त्री शिक्षा

वेदों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि वैदिक समय में स्त्रियों की शिक्षा पर बल दिया जाता था तथा शिक्षा की सुचारू व्यवस्था थी। वे उच्चशिक्षा प्राप्त कर सकती थी पुरूषों की भांति उनका भी उपनयन संस्कार किया जाता था। स्त्री के ज्ञान की श्रेष्ठता के कारण यज्ञ आदि में वे ब्रह्मा का स्थान ग्रहण करती थी तथा वे विविध संस्कार करवा सकती थी। अतः ऋग्वेद में स्त्री को "ब्रह्मा" की संज्ञा प्रदान की गई है।[26] ऋग्वेद के घोषा आख्यान[27], अपाला आख्यान[28] आदि से ज्ञात होता कि स्त्रियों की शिक्षा की व्यवस्था थी। घोषा ने अपना सारा जीवन तप और अध्ययन में बिताया था। उसकी प्रार्थना सफल भी हुई थी अश्विनी कुमारों की स्तुति में उसके मुख से दिव्य मंत्र निकले थे। अपाला अपने पिता के आश्रम में जाकर इन्द्र के निमित्त तप करने लगी थी तथा उसने मंत्रो के द्वारा देव की स्तुति कर उन्हें प्रसन्न भी किया था।

"कन्या वारवायती सोममपि स्त्रुताऽविदत् अस्त।
भरन्त्यब्रवीदिन्द्राय सूनवै त्वा शक्राय सूनवे त्वा"।।[29]

मन्त्रद्रष्टा ऋषिकाओं के रूप में स्त्री

आख्यानों से जो सामाजिक तत्त्व प्राप्त होते है उनसे यह ज्ञात होता है उस समय स्त्रियों को शिक्षा के अतिरिक्त काव्य–कला, ललित–कला, संगीत–नृत्य, शस्त्र विद्या आदि की शिक्षा देने का भी व्यवस्था थी। ऋग्वेद के आख्यानों में ऋषिकाओं का वर्णन ज्ञात होता है। यथा सूर्या सावित्री, घोषा काक्षीवती, यमी–वैवस्वती, अपाला आत्रेयी, उर्वशी, रोमशा, इन्द्राणी, सरण्यु आदि।

परिवार

समाज की सबसे छोटी इकाई परिवार है। परिवार का उद्देश्य है–सबसे छोटी इकाई को सुखी, प्रसन्न, सन्तुष्ट करना। प्राचीन या वैदिक काल में सयुक्त परिवार की व्यवस्था थी। यह परिवार पुरूष–प्रधान थे इनमें जयेष्ठता के आधार पर प्रधान को मुखिया माना जाता था।

माता–पिता

माता–पिता का कर्तव्य था कि वे पुत्रादि को उचित संरक्षण प्रदान करे ताकि वे योग्यतम् बन सके। माता–पिता संतान से मधुर व्यवहार करें और उनका हित साधे। इस प्रकार का वर्णन ऋग्वेद के पुरूरवा उर्वशी संवाद सूक्त में भी प्राप्त होता है। जिसमें उनके आयु नामक पुत्र का वर्णन है।

"विद्युत या पतन्नी दविद्योग्दरन्ती में अप्या काम्यानि।
जनिष्टो अपो नर्यः सुजातः प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः"।।[30]

भाई–बहिन

वेद का परमादेश है कि भाई–भाई , भाई–बहिन, बहिन–बहिन, आपस में प्रेम से रहे। वे मिलकर परिवार की लक्ष्मी में वृद्धि करें। यम–यमी आख्यान के माध्यम से यह आदेश है कि इस पवित्र संबन्ध को दूषित न होने दे। बहिन के प्रति कभी कुदृष्टि न रखें। "पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्।"[31] इस प्रकार का वर्णन मनुस्मृति में भी प्राप्त

होता है, एकान्त पाकर भी भाई बहिन को साथ में सहवास नहीं करना चाहिए।

"मात्रा स्वस्त्रा दुहिता वान विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमापि कर्षति"।।[32]

पति–पत्नी

पं. हरिशरण सिद्धन्तालकार द्वारा पुरूरवा उर्वशी संवाद सूक्त का पति–पत्नी के रूप में बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया है इन मन्त्रों में बताया गया है कि पति–किस प्रकार की पत्नी चाहता है तथा पत्नी किस प्रकार का पति चाहती है। पति तथा पत्नी के कर्तव्यों का वर्णन यहाँ किया गया है। इस सम्पूर्ण सूक्त का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका वास्तविक चित्रण किया गया है।

विवाह

ब्रह्मचर्य आश्रम के पूर्ण होने तथा गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के लिए वर–वधू का विवाह संस्कार होता है। विवाह की आवश्यकता वंश–परम्परा को निरन्तर रखने के लिए है। एंकाकी जीवन पुरूष तथा स्त्री दोनो के लिए ही अपूर्ण होता है। भौतिक सुख–प्राप्ति, सन्तान–प्राप्ति, सहयोगी और सहायक के लिए विवाह आवश्यक है। विवाह एक सामाजिक आवश्यकता है।

वर के गुण

ऋग्वेद और अथर्ववेद में पति के लिए वर शब्द का प्रयोग हुआ है। वर के गुणों का उल्लेख इन शब्दों द्वारा किया गया है। संभल वह पत्नी का संही ढंग से पालन करे। भगेह सह– ऐश्वर्ययुक्त हो। धनपति, प्रतिकाम्य इस प्रकार वर के गुणों का वर्णन यहा किया गया है।

"किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रभिषमुषसामग्रियेव।
पुरुरवः पुनरस्तं परेहि दुरापना वातइवाहमस्मि"।।[33]

वधू के गुण

ऋग्वेद के मंत्र में वधू के गुणों का उल्लेख भी प्राप्त होता है। अघोरचक्षु– मधुर दृष्टि से देखने वाली। स्योना– मधुर स्वभाव वाली। वधु उपासना करने वाली, उत्तम सन्तान को जन्म देने वाली, उदात स्वभाव वाली हो।

"हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु।
न नौ मन्त्रा अनुदितास एते मयस्करन्परतेर चनाहन्"।। [34]

विवाह के प्रकार

वेदों में विवाह के प्रकार का उल्लेख प्राप्त नहीं होता किन्तु मनुस्मृति में आठ प्रकार के विवाह का उल्लेख किया गया है। ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः। गान्धर्वो राक्षसश्चैव, पैशाचश्चष्टमोऽधमः। ऋग्वेद के आख्यानों में विवाह के प्रकारों को देखने का ज्ञान प्राप्त होता है–

पुरूरवा उर्वशी संवाद सूक्त (गान्धर्व विवाह)
अगस्त्य लोपामुद्रा आख्यान(गान्धर्व विवाह)
रोमशा भाव्यव्य आख्यान (दैव विवाह)
सूर्य–सरण्यु आख्यान(ब्रह्म विवाह)

निष्कर्ष

वेद आर्यजाति के प्राण कहे गये है। ये मानव जाति के लिए प्रकाश स्तम्भ की भॉति है। वेदों में सभी विद्याओं के सूक्त विद्यमान है। वेदों में जहाँ धर्म, विज्ञान, दर्शन, आचारशास्त्र आदि प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते है वहीं समाजशास्त्र से संबद्ध सामग्री की भी प्रचुरता है। अतः ऋग्वेद के आख्यानों में प्राप्त होने वाले सामाजिक तत्त्वों में वर्ण और जाति, वर्णाश्रम–व्यवस्था, कर्तव्य, विवाह–संस्कार, नारी का गौरव , परिवार समाज आदि का वर्णन किया गया है तथा यह किस प्रकार से आज के वर्तमान समाज से अपना सम्बन्ध स्थापित करते इनका वर्णन यहाँ किया गया है।

अंत टिप्पणी

1. *ऋग्वेद संहिता सायणाचार्य, वैदिक संशाधन मण्डल तिलक स्मारक मन्दिर पूना, 10.191.1*
2. *वैदिक आख्यान का वैदिक स्वरूप, डॉ. सुरेन्द्र कुमार सत्यधर्म प्रकाशन, जयपुर, पेज 16*
3. *ऋग्वेद संहिता सायणाचार्य, वैदिक संशाधन मण्डल तिलक स्मारक मन्दिर पूना, कृष्णं च वर्णम् अरूणं च सं दधुः। 1.73.4*
4. *श्रीमद्भगवद्गीता, कन्हैयालाल आर्य, चन्द्रवती आर्या वैदिक धर्म सत्यसाहित्य प्रकाशन गुड़गांव (हरियाणा) 4. 13*
5. *शतपथ ब्राह्मण, बी. बी. चौबे, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी 5.5.4.9*
6. *ऋग्वेद संहिता 3.33*
7. *वही 1.170*
8. *वही 10.97*
9. *मनुस्मृति, ऋषि मनु, भाष्यकार आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली 1.88*
10. *ऋग्वेद संहिता 10.97*
11. *वही 1.126*
12. *वही 1.126*
13. *वही 4.18*
14. *यजुर्वेद संहिता, "शतं सेना अजयत् साकमिन्द्र"। 17.33*
15. *मनुस्मृति, ऋषि मनु, भाष्यकार आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली 1.89*
16. *वही 6.85*
17. *वही 3.77*
18. *वही 3.78*
19. *ऋग्वेद संहिता 10.95*
20. *वही 10.17*
21. *वही 10.17*
22. *वही "जयेदस्तम्" 3.53.4*
23. *मनुस्मृति, ऋषि मनु, भाष्यकार आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली, "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः यत्रेतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः"। 3.56*
24. *शतपथ ब्रा., बी. बी. चौबे, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी "यावत् जायां न विन्दते, असर्वो हि तावद् भवति।" 5.2.1.10*
25. *"न वै स्त्रियं घ्नन्ति।"वही 11.4.3.2*
26. *ऋग्वेद संहिता "स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ"। 7.33.19*
27. *वही 1.117*
28. *वही 8.91*
29. *वही 8.91*
30. *वही 10.95.10*
31. *वही 10.10.12*
32. *मनुस्मृति, ऋषि मनु, भाष्यकार आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली, 2.290*
33. *ऋग्वेद भाष्यम्, पं. हरिशरण सिद्धान्तालंकार, श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिण्डौन सिटी (राज.) 10.95.2*
34. *वही 10.95.1*